५५९. स्वतन्त्रः कर्ता १।४।५४॥

क्रियायां स्वातन्त्र्येण विवक्षितोऽर्थः कर्ता स्यात्।

स्वतन्त्रः कर्ता। स्वतन्त्रः प्रथमान्तं, कर्ता प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में किसी पद की अनुवृत्ति नहीं है किन्तु **कारके** का अधिकार है।

क्रिया में स्वतन्त्र रूप से विवक्षित अर्थ रूप कारक कर्तृसंज्ञक होता है।

स्वतन्त्रः संज्ञी (उद्देश्य) और **कर्ता** संज्ञा (विधेय) है। वाक्य में कर्ता, कर्म, क्रिया आदि होते हैं। इन सबमें जो प्रधान होता है या प्रधान क्रिया की सिद्धि जिससे होती है, वह जो वाक्य में प्रधानतया अवस्थित रहता है, जिसके विना क्रिया हो ही नहीं पाती है, ऐसे कारक की **कर्तृसंज्ञा**(कर्ता-संज्ञा) इस सूत्र से की जाती है। कर्ता ही क्रिया का जनक होता है। कर्ता के अनुसार ही क्रिया में लिङ्ग, संख्या आदि का निर्धारण होता है। **जैसे राम पढ़ता है** इस वाक्य में क्रिया है- **पढ़ता है**, इस क्रिया की सिद्धि में राम की अनिवार्य भूमिका है, उसके विना क्रिया की सिद्धि हो ही नहीं सकती। अतः **राम** को कर्ता माना गया। तात्पर्य यह है कि क्रिया की सिद्धि में कर्ता क्रिया का स्वतन्त्ररूपेण जनक होता है। शेष सभी-कारक कर्ता से प्रेरणा पाकर क्रिया का निष्पादन करते हैं। अतः क्रिया-निष्पादन में कर्ता स्वतन्त्र होता है और स्वतन्त्र की कर्तृसंज्ञा होती है।

यह स्वातन्त्र्य जो है, वह वक्ता के अधीन है। जिसकी स्वातन्त्र्येण विवक्षा होती है, प्रधान क्रिया-निष्पादन में उसकी कर्तृसंज्ञा होती है। अतः **स्थाल्या पच्यते** में भी स्थाली की भी स्वातन्त्र्येण विवक्षा होने से कर्तृसंज्ञा होकर **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से कर्तृतृतीया सम्भव हो पाती है। एक बात और भी ध्यातव्य है कि वक्ता जिसका प्राधान्य विवक्षा करेगा, वह धात्वर्थ के आधार पर होता है। जैसे कि यहाँ पर अधिकरणभूत स्थाली के अत्यन्त गरम होने से शीघ्र पकना अर्थ **पच्यते** का लिया गया है। अतः **स्थाल्या** में कर्तृसंज्ञा हुयी है। इस प्रकार विवक्षा करने में **विवक्षातः कारकाणि भवन्ति** यह न्याय ही प्रमाण है।

५६०. साधकतमं करणम् १।४।४२॥

क्रियासिद्धौ प्रकृष्टोपकारकं कारकं करणसञ्ज्ञं स्यात्।

तमब्ग्रहणं किम्? गङ्गायां घोषः।

साधकतमं करणम्। साधयतीति साधकम्, अतिशयितं साधकं साधकतमम्। साधकतमं प्रथमान्तं, करणं प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में भी **कारके** का अधिकार है।

क्रिया की सिद्धि में अत्यन्त सहायक कारक की करणसंज्ञा होती है।

करण संज्ञा (विधेय) और **साधकतमम्** संज्ञी (उद्देश्य) है। **कारके** का अधिकार होने के कारण **क्रियासिद्धौ** अर्थ लभ्य हो जाता है। सबसे अधिक उपकारक उपकरण को **साधकतम** कहा जाता है। जिसकी सहायता से कार्य किया जाये, उसे **कारण** कहते हैं किन्तु जिस कारण से व्यापार के अनन्तर सद्यः ही क्रिया की निष्पत्ति विवक्षित होती है, उसे **करण** माना जाता है। यद्यपि सभी कारक क्रिया के निष्पादन में सहायक होते हैं, परन्तु जो कारक सर्वाधिक अत्यन्त निकटता के साथ सहायक होता है, उसे **करण** कहा जाता है।

तात्पर्य यह है कि करण कारक में प्रकृष्ट उपकारकता अन्य कारकों की दृष्टि से होती है, न कि असभी करणों के बीच। इस तरह कर्ता के द्वारा क्रिया की उत्पत्ति करने में जो अतिशय साधक हो, वह **करण** हो जाता है। **साधक** शब्द से **अतिशायने तमबिष्ठनौ** सूत्र के द्वारा **तमप्** प्रत्यय हुआ है। यह प्रत्यय अतिशायन अर्थ में होता है। यद्यपि कर्ता क्रिया की सिद्धि के लिये करण (साधन) का आश्रय लेता है तथापि वह स्वातन्त्र्य के कारण प्रधान बना रहता है, क्योंकि वह प्रधानक्रिया के निष्पादन उसी के द्वारा होता है। परायत्तवृत्ति=दूसरे (कर्ता आदि) के द्वारा संचालित होने के कारण **करण** रूप साधन **गौण** होता है, क्योंकि यह अपनी अवान्तर क्रिया का निष्पादन करते हुये प्रधान क्रिया में सहायक मात्र होता है, अतः यह करण कर्ता के बिना व्यापारशील नहीं होता। करणसंज्ञा होने के फलस्वरूप **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से करण में ही तृतीयाविभक्ति हो जाती है।

यद्यपि इस सूत्र के उदाहरण मूल में आगे दिये गये हैं तथापि सूत्रार्थ समझने के लिये अन्य कुछ उदाहरण देखते हैं-

असिना छिनत्ति। तलवार से काटता है। यहाँ प्रधान छेदनक्रिया में **असि** (तलवार) अपनी अवान्तर क्रिया (शीघ्रगति से पहुँचना) के द्वारा सर्वाधिक उपकारक है। अतः इसकी प्रकृतसूत्र से करणसंज्ञा होती है। करणसंज्ञा का फल **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीयाविभक्ति होना है। फलतः **असिना छिनत्ति** बन जाता है। इसी तरह **श्यामः वाहनेन आपणं गच्छति**- श्याम गाड़ी से बाजार जाता है। इस वाक्य में श्याम के बाजार पहुँचने में अत्यन्त सहायक है **वाहन**। अतः **वाहन** की इस सूत्र से करणसंज्ञा हुई। करणसंज्ञा का फल तृतीया-विभक्ति करना है। वाहन में करणसंज्ञा होकर तृतीया विभक्ति हो जाने से **वाहनेन** बन जाता है।

यहाँ पर ध्यातव्य है कि यह करणसंज्ञा भी विवक्षाधीन है। अतः कदादिचत् अधिकरण, अपादान आदि की भी करणत्वेन (जिसके व्यापार के अनन्तर सद्यः ही प्रधान क्रिया निष्पन्न होती है) विवक्षा होने पर उनकी भी करणसंज्ञा होती है। अतः यद्यपि **स्थाल्यां पचति** ऐसा ही प्रयोग देखा जाता है परन्तु जब उस अधिकरण की करणत्वेन विवक्षा कर देते हैं तो **स्थाल्या पच्यते** भी प्रयोग बन जाता है।

तमब्ग्रहणं किम्? गङ्गायां घोषः। सूत्र का पदकृत्य बताने के लिये प्रश्न कर रहे हैं कि प्रकृतसूत्र में **साधक** शब्द के साथ **तमप्** प्रत्यय जोड़ने की क्या आवश्यकता है? इस प्रश्न का आशय यह है कि **साधक** शब्द यहाँ कारक का पर्यायवाची है। **कारके** सूत्र के अधिकार से ही साधक अर्थ सिद्ध होते हुये भी पुनः प्रकृतसूत्र में **साधक** शब्द के ग्रहण करने से **अत्यन्त साधक** यह अर्थ (प्रकर्षार्थ) प्राप्त ही जायेगा तो पुनः प्रकर्षार्थ में **तमप्** करके पाठ करने की क्या आवश्यकता है? इस पर समाधान देते हैं कि कार्य सिद्ध होते हुये भी तदर्थ किया गया तमब्ग्रहण व्यर्थ होकर ज्ञापित करता है कि कारकप्रकरण में शब्दसामर्थ्य से गम्य प्रकर्षार्थ नहीं माना जाता। अतः प्रकृत में भी साधक-शब्द से गम्य प्रकर्षार्थ (साधकतम) का आश्रयण नहीं लिया जा सकता। अतः इसके लिये किया गया तमब्ग्रहण स्वांश में (अपने स्थल पर) सार्थक हो जाता है तथा इसके द्वारा ज्ञापित नियम अन्यत्र प्रवृत्त होकर इष्टकार्य को सिद्ध करता है। जैसे कि **गङ्गायां घोषः** इत्यादि की सिद्धि। वहाँ का प्रकरण इस प्रकार है- यदि कारणप्रकरण में भी शब्दसामर्थ्यगम्य प्रकर्ष लिया जाता तो **आधारोऽधिकरणम्** सूत्र में भी **अधिक्रियन्ते क्रियाः अस्मिन्** इस विग्रहानुसार **अधिकरणम्** इस अन्वर्थसंज्ञा से ही आधार संज्ञी का लाभ हो ही रहा है, फिर भी किया गया उसका पाठ यह ज्ञापित करेगा कि सर्वावयवव्याप्त्या जो आधार होगा, उसी की अधिकरणसंज्ञा होगी। ऐसा होने पर **तिलेषु तैलम्** आदि में ही अधिकरणसंज्ञा हो जायेगी, **गङ्गायां घोषः** आदि में तो नहीं हो सकेगी। इस समस्या का समाधान प्रकृतसूत्र में **तमप्**-शब्द के ग्रहण द्वारा ज्ञापित नियम से ही होगा। तदनुसार यहाँ भी शब्दसामर्थ्यगम्य प्रकर्ष नहीं लिया जायेगा और **आधार** पद से सभी आधार लिये जायेंगे, न कि केवल सर्वावयव आधार। इस तरह **गङ्गायां घोषः** सिद्ध हो जायेगा।

कारक अन्वर्थ संज्ञा है। अतः सूत्र में **गौणमुख्यन्याय** प्रवृत्त नहीं होता। वह न्याय है- **गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रययः।** अर्थात् गौण और मुख्य दोनों उपस्थित हों तो मुख्य में कार्य होता है। **कारक** अन्वर्थसंज्ञा से ही गौणमुख्यन्याय के बाधित हो जाने से **आधारोऽधिकरणम्** सूत्र में आधारमात्र अधिकरणसंज्ञा अपेक्षित है, विशेष आधार की नहीं। इस हेतु **गङ्गायां घोषः** (गङ्गा में झोपड़ी) में गौण के आधार होने पर भी सप्तमी होती है। इस वाक्य का लाक्षणिक अर्थ है- गङ्गा के किनारे झोपड़ी है। गङ्गा यह लाक्षणिक (लक्षणावृत्ति से प्राप्त) आधार तो है परन्तु वह आधारतम अर्थात् सर्वाधिक आधार नहीं है। अतः करणसञ्ज्ञा न हुई। यदि अन्य कारकों के साथ भी **तमप्** प्रत्यय का प्रयोग इष्ट होता तो **तिलेषु तैलम्, दध्नि सर्पिः** इत्यादि में तो तिल, दधि के आधारतम होने से अधिकरण सञ्ज्ञा हो जाती परन्तु **गङ्गायां घोषः** में **गङ्गा** की अधिकरण सञ्ज्ञा प्राप्त न हो पाती। इसी तरह **कूपे गर्गकुलम्** में अधिकरणसंज्ञा न हो पाती। आधारतम की परिकल्पना में यहाँ सप्तमीविभक्ति प्राप्त नहीं होती। तात्पर्य यह है कि कारक में **गौणमुख्ययोर्मुख्ये कार्यसम्प्रत्ययः** न्याय बाधित होता है, इसका ज्ञापन करने के लिये प्रकृतसूत्र में **तमप्** का ग्रहण किया गया है।

५६१. कर्तृकरणयोस्तृतीया २।३।१८॥

अनभिहिते कर्तरि करणे च तृतीया स्यात्।

रामेण बाणेन हतो बाली।

'प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्' (वा.१४६६)। प्रकृत्या चारुः। प्रायेण याज्ञिकः। गोत्रेण गार्ग्यः। समेनैति। विषमेणैति। द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। सुखेन दुःखेन वा यातीत्यादि।

कर्तृकरणयोस्तृतीया। कर्ता च करणं च कर्तृकरणे, तयोः। कर्तृकरणयोः सप्तम्यन्तं, तृतीया प्रथमान्तं, द्विपदमिदं सूत्रम्। इस सूत्र में **अनभिहिते** का अधिकार है। अनभिहिते का अर्थ है- **अनुक्ते**।

अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण में तृतीया-विभक्ति होती है।

अधिकृत **अनभिहिते** पद को वचनविपरिणाम के द्वारा द्विवचनान्त **अनभिहितयोः** बना लिया जाता है। अतः **अनभिहित** का **कर्ता** और **करण** दोनों के साथ अन्वय होता है। इस तरह अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण में तृतीया की जाती है।

रामेण बाणेन हतो बाली। राम के द्वारा बाण से बाली मारा गया। यहाँ हननक्रिया में स्वतन्त्रतया विवक्षित होने से **स्वतन्त्रः कर्ता** के अनुसार राम **कर्ता** है। इसी प्रकार हननक्रिया में अत्यन्त सहायक होने से **साधकतमं करणम्** से बाण की **करणसंज्ञा** हुई है। **हतः** में हन्-धातु से **तयोरेव कृत्यक्तखलर्थाः** से कर्म अर्थ में क्त प्रत्यय होकर **हतः** बना है। कर्म अर्थ में प्रत्यय होने के कारण कर्म उक्त हुआ और कर्ता, करण आदि स्वतः अनुक्त हुए। **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से अनुक्त कर्ता राम और अनुक्त करण बाण दोनों में तृतीयाविभक्ति हो गई- **रामेण बाणेन हतो बाली।** इस वाक्य में बाली कर्म है। कर्म के उक्त होने के कारण **कर्मणि द्वितीया** से **द्वितीया-विभक्ति** नहीं हुई, किन्तु **प्रातिपदिकार्थलिङ्गपरिमाणवचनमात्रे प्रथमा** से प्रातिपदिकार्थमात्र में **प्रथमा** विभक्ति हुई- **बाली**। यहाँ एक ही वाक्य अनुक्त कर्ता और अनुक्त करण दोनों का उदाहरण बन जाता है। **रामकर्तृकबाणकरणकहिंसाक्रियाविषयो बाली।** यह इस वाक्य का शाब्दबोध है।

करण-तृतीया मात्र का उदाहरण देखें-

बालकः कन्दुकेन क्रीडति। बालक गेंद से खेलता है। इस वाक्य में खेलन रूप क्रिया में स्वतन्त्र विवक्षित **बालक** है। **क्रीड्** धातु से **कर्ता** अर्थ में लकार हुआ है। अतः इस वाक्य में कर्ता **उक्त** है। **कर्ता** उक्त हुआ तो कर्म, करण आदि स्वतः अनुक्त हुए। बालक के खेलने में अत्यन्त सहायक है **गेंद**। अतः **गेंद** का वाचक **कन्दुक** शब्द **साधकतमं करणम्** से **करणसंज्ञक** है। **करणसंज्ञा** का फल **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया विभक्ति करना है। अतः कन्दुक में तृतीया विभक्ति हो गई- **बालकः कन्दुकेन क्रीडति।**

अनुक्त कर्ता में तृतीया का उदाहरण है- **मया पुस्तकं पठ्यते।** यहाँ **मया** कर्ता, **पुस्तकं** कर्म और **पठ्यते** क्रिया है। यहाँ पर पठ्-धातु से कर्म में लकार होने के कारण कर्म उक्त है। कर्म के उक्त हो जाने से कर्ता आदि अनुक्त हो गये। अतः अनुक्त कर्ता में **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया विभक्ति हो जाने से **मया** बन गया है। कर्म के उक्त होने पर **कर्मणि द्वितीया** नहीं लगती। अतः प्रातिपदिकार्थमात्र में **पुस्तक** शब्द से प्रथमा होकर **पुस्तकम्** बन जाता है।

प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्। यह वार्तिक है। वार्तिकार्थः- प्रकृति आदि शब्दों से तृतीया विभक्ति होती है। प्रकृत्यादि एक गण है और यह आकृतिगण है, ऐसा आचार्य मानते हैं।

प्रकृत्या चारुः। स्वभाव से अच्छा। यहाँ सम्बन्धार्थ में **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से तृतीया विभक्ति हुयी है। अतः सम्बन्ध तृतीयार्थ है। प्रकृति-शब्द के तृतीयैकवचन में **प्रकृत्या** बनता है। यदि स्वभाव से ही किसी व्यक्ति की सुन्दरता का कथन अपेक्षित हो अलंकारादि उपकरणों से नहीं हो तो करण अर्थ की विवक्षा में तृतीया विभक्ति भी सम्भव है, ऐसा भाष्यकार का मत है।

प्रायेण याज्ञिकः। अधिक आचार-सम्पन्न याज्ञिक। प्रकृत्यादि गण में **प्राय**-शब्द का पाठ मानकर उसमें **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से सम्बन्धार्थ में तृतीया विभक्ति हुयी है- **प्रायेण। प्राय** शब्द का यदि **अधिक आचार हेतुक** ऐसा अर्थ माना जाय तो आगे वक्ष्यमाण **इत्थम्भूतलक्षणे** से भी तृतीयाविभक्ति सिद्ध हो सकती है।

गोत्रेण गार्ग्यः। गोत्र से यह गार्ग्य है अर्थात् यह गर्ग गोत्र का है। प्रकृत्यादि गण में **गोत्र**-शब्द का पाठ मानकर उसमें **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से सम्बन्धार्थ में तृतीया विभक्ति हुयी है- **गोत्रेण।** यदि गोत्र को गार्ग्य होने में हेतु मान लिया जाय तो पूर्ववत् **इत्थम्भूतलक्षणे** से भी तृतीयाविभक्ति सिद्ध हो सकती है।

समेनैति। सीधा चलता है। प्रकृत्यादि गण में **सम**-शब्द का पाठ मानकर उसमें **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से तृतीया विभक्ति हुयी है- **समेन एति।**

विषमेणैति। टेढ़ा चलता है। प्रकृत्यादि गण में **विषम**-शब्द का पाठ मानकर उसमें **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से तृतीया विभक्ति हुयी है- **विषमेण एति।**

उपर्युक्त दोनों उदाहरणों में यदि **सम** और **विषम** पदों को करणवाची **मार्ग** का विशेषण मान लिया जाय तो करणार्थ में **कर्तृकरणयोस्तृतीया** सूत्र से तृतीया विभक्ति हो सकती है।

द्विद्रोणेन धान्यं क्रीणाति। दो द्रोण परिमाण से धान्य खरीदता है। प्रकृत्यादिगण में **द्विद्रोण**-शब्द का पाठ मानकर सम्बन्धार्थ में **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से तृतीया विभक्ति हुयी है- **द्विद्रोणेन।** यदि **द्विद्रोण** को तादर्थ्य में प्रयुक्त मानकर **दो द्रोण के सुवर्ण के मूल्य से** एसा अर्थ मान लिया जाय तो करण कारक में **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीया हो सकती है।

सुखेन दुःखेन वा याति। सुखपूर्वक या दुःखपूर्वक जाता है। प्रकृत्यादिगण में **सुख** और **दुःख** शब्दों का पाठ मानकर क्रियाविशेषण में **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** वार्तिक से तृतीया विभक्ति हुयी है- **सुखेन याति, दुःखेन याति।** यहाँ क्रियाविशेषण में प्राप्त द्वितीया को बाधकर तृतीया हुयी है।

इत्यादि। मूल में प्रदत्त **इत्यादि** शब्द से इसी तरह के अनेक स्थलों में **प्रकृत्यादिभ्य उपसंख्यानम्** से तृतीया हो जाती है, ऐसा अर्थ गृहीत होता है। जैसे कि

नाम्ना गोविन्दः, आत्मना तृतीयः, स्वभावेन सुन्दरः, प्रकृत्या मधुरं गवां पयः, प्रकृत्या वक्रः इत्यादि। इसके आकृतिगण होने के कारण ही **सुखेन ऋतः** में तृतीया हा`जाती है।

५६२. दिवः कर्म च १।४।४३॥

दिवः साधकतमं कारकं कर्मसञ्ज्ञं स्यात्, चात् करणसञ्ज्ञम्।

अक्षैरक्षान् वा दीव्यति।

दिवः कर्म च। दिवः षष्ठ्यन्तं, कर्म प्रथमान्तं, चाव्ययम्। **कारके** का अधिकार है और **साधकतमं करणम्** से **करणम्** की अनुवृत्ति आती है।

दिव् धातु का जो सर्वाधिक उपकारक कारक, उसकी कर्मसंज्ञा और करणसंज्ञा होती है।

यहाँ **परिक्रयणे सम्प्रदानमन्यतरस्याम्** से **अन्यतरस्याम्** का अपकर्षण करके तथा **साधकतमं करणम्** से **करणम्** का अनुवर्तन करके कर्म, करण दोनों संज्ञाओं का समावेश हो ही जाता, पुनः **च**-शब्द का पाठ करने की क्या आवश्यकता थी? एसो प्रश्न होने पर समाधान देते हैं कि यहाँ पर **आकडारादेका संज्ञा** के नियम से एकसंज्ञाधिकार है। अतः युगपत् संज्ञाद्वय का समावेश नहीं हो रहा था। तदर्थ चकार का पाठ रूप विशेष प्रयास किया गया। फलतः एकत्र ही दोनों संज्ञाओं का समावेश होता है। इसके फलस्वरूप **अक्षैर्देवयते** में करणसंज्ञा को मानकर तृतीयाविभक्ति तथा कर्मसंज्ञा को मानकर धातु सकर्मक हो जाती है, जिससे कि **अर्णावकर्मकाच्चित्तवत्कर्तृकात्** से अकर्मक को होने वाला परस्मैपद नहीं होता। इस तरह **च** शब्द के द्वारा दोनों संज्ञाओं का समावेश है। पूर्वसूत्र से करणसंज्ञा मात्र प्राप्त थी, यहाँ पर कर्मसंज्ञा का भी विधान किया गया है। इसके कारण द्वितीया और तृतीया दोनों विभक्तियाँ भी हो जाती हैं। जैसे कि-

अक्षान् दीव्यति, अक्षैर्दीव्यति। पासों से खेलता है। यहाँ जुआ खेलने में पासे अत्यन्त उपकारक हैं। अतः इनकी **साधकतमं करणम्** से करणसंज्ञा प्राप्त है किन्तु **दिव्** धातु का प्रयोग होने के कारण उसमें साधकतम होने से **दिवः कर्म** से उसकी करणसंज्ञा और कर्मसंज्ञा दोनों हो जाती हैं। कर्मसंज्ञा होने के पक्ष में **कर्मणि द्वितीया** से द्वितीया विभक्ति होकर बहुवचन में **अक्षान् दीव्यति** वाक्य बनता है और करणसंज्ञा होने के पक्ष में **कर्तृकरणयोस्तृतीया** से तृतीयाविभक्ति होकर बहुवचन में **अक्षैर्दीव्यति** बनता है।

५६३. अपवर्गे तृतीया २।३।६॥

अपवर्गः=फलप्राप्तिः, तस्यां द्योत्यायां कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे तृतीया स्यात्।

अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः। अपवर्गे किम्? मासमधीतो नायातः।

अपवर्गे तृतीया। अपवर्गे सप्तम्यन्तं, तृतीया प्रथमान्तम्। **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** सूत्र का अविकल अनुवर्तन है और **अपवर्ग** शब्द का अर्थ है- **फलप्राप्ति।**

फलप्राप्ति अर्थ द्योत्य होने पर काल और अध्व के वाचक शब्दों के अत्यन्तसंयोग में तृतीया विभक्ति होती है।

अपवर्ग का सामान्यतः अर्थ समाप्ति है। **कर्मापवर्गे लौकिक अग्नयः** इत्यादि प्रयोगों में उस अर्थ में इसका प्रयोग देखे जाने से समाप्ति अर्थ माना जाता है। प्रकृत में भी अर्थ तो वहीं है परन्तु यहाँ फलप्राप्ति-पर्यन्त प्रायः क्रिया का नैरन्तर्य देखे जाने से

समाप्ति का तात्पर्य भी फलप्राप्ति ही है लिया जाता है। तदनुसार 'क्रिया की समाप्ति के बाद फल का प्राप्त होना' ऐसा अर्थ बन जाता है। अत्यन्तसंयोग का अर्थ लगातार है। यह तृतीया **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** से होने वाली द्वितीया का अपवाद है।

अह्ना क्रोशेन वा अनुवाकोऽधीतः। मूलकार ने काल और अध्व का उदाहरण एकसाथ दिया है, हमें इसके दो वाक्य बनाने होंगे- **अह्ना अनुवाकोऽधीतः** और **क्रोशेन अनुवाकोऽधीतः।** वेद मण्डल, अध्याय, अनुवाक, सूक्त आदि में बँटे हुये होते हैं। अष्टकादि वेद में कुछ मन्त्रों के समूह नाम अनुवाक है और यह एक अध्याय जैसा ही होता है।

अह्ना अनुवाकोऽधीतः। एक दिन में नैरन्तर्येण अनुवाक पढ़ लिया। तात्पर्य यह है कि अनुवाक पढ़ने के साथ वह याद भी हो गया। अतः फलप्राप्ति हो गयी। दिनभर पढ़ने में निरन्तरता भी रही। ऐसा नहीं की दो घंटे पढ़ा फिर अन्य काम किया और फिर पढ़ा। अतः अत्यन्तसंयोग होने के कारण कालवाचक **अहन्** शब्द में **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** को बाधकर **अपवर्गे तृतीया** से तृतीया विभक्ति होकर **अह्ना** बन जाता है।

क्रोशेन अनुवाकोऽधीतः। एक कोस चलते-चलते अनुवाक पढ़ लिया। अनुवाक पढ़ने के साथ वह याद भी हो गया। याद हो जाने से फलप्राप्ति हो गयी। कोस भर पढ़ने में निरन्तरता भी रही। अतः अत्यन्तसंयोग होने के कारण अध्ववाचक **क्रोश** शब्द में **अपवर्गे तृतीया** से तृतीया विभक्ति होकर **क्रोशेन** बन जाता है।

अपवर्गे किम्? मासमधीतो नायातः। पदकृत्य बताने के लिये प्रश्न कर रहे हैं कि प्रकृतसूत्र में **अपवर्गे** पद का क्या प्रयोजन है? उसका प्रयोजन यह है कि क्रिया के बाद फल की प्राप्ति भी हो रही हो तो तृतीया हो, अन्यथा फल की प्राप्ति नहीं हो रही तो तृतीया न हो। जैसे के **मासम् अधीतो नायातः** (महीने भर पढ़ा फिर भी याद न हुआ) में क्रिया के बाद फलप्राप्ति नहीं हुयी। अतः अत्यन्तसंयोग होने पर भी कालवाचक **मास** शब्द से तृतीया नहीं हुयी, अपितु **कालाध्वनोरत्यन्तसंयोगे** सूत्र से द्वितीया विभक्ति होकर **मासम् अधीतो नायातः** बन जाता है।